Samanjasya सामंजस्य **Volume 02, Number 01, June 2025**
ISSN: 3049-3269 (Online) **Page Number: 84 - 92**

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की महता

डिम्पल गुप्ता[1], §

शोध सारः भारत भूमि पवित्र है, इस ज्ञान परंपरा में सभी के सुख, कल्याण एवं नैतिकता जैसे गुणों का समाहार मिलता है। वर्तमान युग में "वसुधैव कुटुंबकम" एवं "अतिथि देवो भव" जैसे मूल्य समाज को एक दिशा दे सकते हैं, इसके साथ-साथ वेद, उपनिषद, गीता एवं रामायण जैसे ग्रंथ, महापुरुषों एवं संतों का जीवन युवाओं को प्रेरित करने में महती भूमिका निभाता है। आज के उत्तर-आधुनिक युग में आवश्यकता है कि इन महती मूल्यों को युवाओं में पुनःस्थापित करना। इसकी शुरुआत परिवारों से करनी होगी, इसके साथ साथ शिक्षण संस्थानों में नयी शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से विद्यार्थियों को इस परंपरा से जोड़ने का सफल प्रयास सरकार द्वारा किया गया है, जिसमें मूल्य आधारित शिक्षा एवं भारतीय ज्ञान परंपरा जैसे पाठ्यक्रम को लगाया गया है, जिससे विद्यार्थी अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व कर सकें। आज परंपरागत एवं आधुनिक पद्धतियों को साथ लेकर चलने की आवश्यकता है, जिससे व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को समुन्नत कर इस परंपरा को और समृद्ध कर सकें।

बीज शब्दः सांस्कृतिक विरासत, नैतिक मूल्य, मानवता, कल्याण, विकसित राष्ट्र, प्रशस्त, पीढ़ी।

[1] हिंदी विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय (सांध्य), नेहरु नगर, रिंग रोड, नई दिल्ली – 110065, भारत।
Email: dr.guptadimple@gmail.com
§ Manuscript received: 11-06-2025; accepted: 30-06-2025. Samanjasya, Volume 02, Number 01 © Zakir Husain Delhi College, 2025; all rights reserved.

प्रस्तावना

भारत भूमि पवित्र है, इसमें ज्ञान की अजस्र धारा निरंतर बही है और जिसने सदैव ही भारतीयों के मानस को सिंचित करने का कार्य किया है। भारतीय ज्ञान परंपरा का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। यह विश्व की प्राचीनतम परंपरा है जो दर्शन, साहित्य, अध्यात्म, कला, विज्ञान एवं ज्योतिषशास्त्र आदि अनेक विषयों में दिखाई देती है, यहां की पवित्र भूमि पर ऋषि, मुनियों एवं तपस्वियों ने कठोर तपस्या करके अमूल्य ज्ञान अर्जित किया है और समूचे विश्व को समुन्नत करने का मार्ग दिखाया है। हमारी धरती सदैव अर्पण, तर्पण एवं समर्पण की रही है। यहां सदैव सभी के सुख एवं कल्याण की कामना का भाव रहा है, हम केवल अपनी मुक्ति की बात नहीं करते अपितु सभी की मुक्ति की बात करते हैं ---

सर्वे भवंतु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः

यहां अधिकारों के स्थान पर कर्तव्यों को महत्व दिया गया है, दर्शनशास्त्र एवं पुराणों में भी कर्तव्यों की बात की गई है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में मानवता का भाव है। यह परंपरा समूचे विश्व के कल्याण को केंद्र में रखते हुए सबको साथ लेकर चलने में विश्वास रखती है। हमें अपनी इस सामूहिक विरासत पर गर्व रहा है। इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'अशोक के फूल' नामक निबंध में भारत की इसी सामूहिक विरासत का उल्लेख इन शब्दों में किया है---

रवीन्द्रनाथ ने इस भारतवर्ष को महामानव कहा है। विचित्र देश है यह - असुर आए, आर्य आए, शक आए, हूण आए, नग आये, यक्ष आए, गंधर्व आए, न जाने कितनी मानव जातियां यहां आई और आज के भारतवर्ष को बनाने में अपना हाथ लगा गई। भारतीय ज्ञान परंपरा भौतिकता के स्थान पर आध्यात्मिकता, नैतिकता जैसे गुणों को अपने में समाहित करते हुए परंपरा को साथ लेकर चलती है। उपनिषदों में भी कहा गया है - विद्या से मृत्यु को जीतो और अमृत को प्राप्त करो, इसी प्रकार यह भी सत्य है कि ज्ञान के बिना मुक्ति संभव ही नहीं है और विद्या अर्थात ज्ञान ही वह पक्ष है जो हमें हर प्रकार के संशय से मुक्त करता है।

सा विद्या या विमुक्तये

भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में यह भी सत्य है कि भारत ने समर्थ एवं समृद्ध होने पर भी कभी किसी राष्ट्र पर अपना आधिपत्य स्थापित नहीं किया और इसका प्रमाण हमें रामायणकालीन समाज में राम के चरित्र में अनेक स्थलों पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है, बाली की मृत्यु के उपरांत श्री राम अंगद को युवराज घोषित करते हैं और इसी प्रकार राम - रावण युद्ध में रावण की मृत्यु के उपरांत राम ने लंका पर अपना आधिपत्य स्थापित न कर विभीषण का राज्याभिषेक करके उसे वहाँ का राजा बनाया और स्वयं वहां से प्रस्थान कर जाते हैं। इसके मूल में भारतीय ज्ञान परंपरा का एक और उज्ज्वल पक्ष

दिखाई देता है, वह यह है कि हमारे यहाँ कभी भी भौतिक ऐश्वर्य को महत्व नहीं दिया गया और सांस्कृतिक दृष्टि से सबको श्रेष्ठ बनाने का संकल्प भारतीय दृष्टि का रहा है ।

भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में परंपरा शब्द अति महत्त्वपूर्ण है । परंपरा से तात्पर्य ऐसे आचार-विचार, व्यवहार, विश्वास, रीति -रिवाज, पर्व- उत्सव, ज्ञान, भाषा, प्रथाएं एवं वे जीवन मूल्य हैं जो सामाजिक संरचना को सुचारु रूप से बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी हंस्तांतरित होते रहते हैं, समय, स्थान एवं परिस्थितियों के अनुसार परंपरा का स्वरूप बदलता रहता है लेकिन उसमें निहित मूल भावना और आत्मा नहीं बदलती । उद्धारण के लिए विवाह के या अन्य मांगलिक अवसरों पर गीत गाने की परंपरा रही है लेकिन आज विवाह के अवसर पर उस परंपरागत रूप का प्रचलन तो बिल्कुल कम होता जा रहा है, जहां रात में घर का आँगन घर, परिवार एवं पड़ोस की स्त्रियों से भरा होता था और ढोलक एवं स्त्रियों के पैरों में बंधे घुंघुरुओं की ध्वनि से आधी रात तक आँगन गुंजायमान रहता था लेकिन आज इस सहज परंपरा का स्थान डीजे एवं संगीत ने ले लिया है ।

परंपराओं का उद्येश्य समाज में सामंजस्य एवं समरसता उत्पन्न करते हुए राष्ट्र एवं समुदाय को विकसित एवं समुन्नत बनाना है । परंपरा एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसमें निरन्तरता बनी रहती है और यह अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य तक प्रवाहित होती है । इस प्रकार परंपरा साहित्य, संस्कृति और समाज में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह एक सतत् एवं प्रवाहमान प्रक्रिया है जो जनसमुदाय को एतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से परिचित कराते हुए उसे आत्मबोध कराती है जिससे वह अपनी मिट्टी, जमीन एवं जड़ों से जुड़ा रहे और अपना एवं समाज का उत्थान कर सके । परंपरा को केवल अतीत की विरासत के रूप में नहीं देखा जा सकता अपितु यह वर्तमान एवं भविष्य का मार्ग प्रशस्त करती हैं । इस दृष्टि से भारत विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है । यहाँ की संस्कृति में संकीर्णता का भाव कभी नहीं रहा, विश्व की संस्कृतियों में जो भी अनुकरणीय रहा उसे हमने गृहण एवं स्वीकार किया है, यहाँ की परंपरा अनेक संस्कृतियों के मेल से समुन्नत होकर विश्व मे प्रतिष्ठित हुई है, इसलिए यहाँ की सामाजिक संस्कृति, धार्मिक परम्पराएं एवं मान्यताएं विविधता में भी एकता की भावना उत्पन्न करते हुए पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने का कार्य करती हैं । इस प्रकार ये परम्पराएं सांस्कृतिक विरासत का एक अभिन्न अंग हैं और इनका उद्येश्य सामाजिक अस्मिता, एकता एवं अखंडता को बढ़ावा देते हुए राष्ट्र की प्रगति करना रहा है । वर्तमान रचनाशीलता के संदर्भ में परंपरा का मूल्यांकन अवश्य होना चाहिए । जीवंत परंपराओं को रुढ़ि से अलगाने का विवेक भी इतिहास लेखक में अवश्य होना चाहिए ।

भारतीय ज्ञान परंपरा की पुरातनता और व्यापकता का उल्लेख करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत – भारती में लिखा है ----

शैशव – दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे,

संसार को हमी ने पहले ज्ञान की शिक्षा दी,
आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की ।[1]

पाश्चात्य परंपरा में ज्ञान शक्ति है, कहा भी गया है – Knowledge is Power. लेकिन भारतीय दृष्टि इससे भिन्न है, यहाँ ज्ञान को शुद्धिकरण के रूप में स्वीकार किया गया है । इस परंपरा ने सदैव मानव जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है ।

भारतीय ज्ञान परंपरा को पल्लवित एवं पोषित करने में ऋषियों एवं विद्वानों के साथ - साथ ऋषिकाओं एवं विदुषियों का भी बहुत बड़ा योगदान रहा है -ब्रह्मा के साथ सरस्वती, शिव के साथ महाविद्या रूप शक्तियों, महामुनि वशिष्ट के साथ अरुंधती, अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा, अत्रि के साथ अनुसूया, याज्ञवल्क्य के समकक्ष गार्गी, घोषा आदि वैदिक विद्याओं की ऋषिकाओं ने बराबर ज्ञान परंपरा की भूमिका का निर्वाह किया है । इन्होंने विचार एवं तर्क शास्त्र की पद्धति और समाज के लिए उपयोगी भिन्न – भिन्न कला विद्याओं का अनवेक्षण करने में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है ।

भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने के उपरांत वर्तमान परिदृश्य की बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि आज जिस उत्तर आधुनिक युग में हम जी रहे हैं, यह युग संस्कृतियों के संक्रमण का युग है । इस दौर में भारतीय संस्कृति पर संकट है क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति युवाओं के तन और मन पर हावी है, उनमें विदेशों में बसने की होड़ लगी हुई है, सभी प्रकार के मूल्यों विशेष रूप से युवाओं में नैतिक मूल्यों का तेजी से विघटन हो रहा है, परिवार टूट रहे हैं, बिखर रहे हैं । सभी प्रकार के संबंधों पर प्रश्न चिह्न लगा हुआ है, सर्वत्र अविश्वास है, प्रेम, सौहार्द एवं आत्मीयता का स्थान घृणा एवं द्वेष ने ले लिया है, आज हम भौतिक विकास की दौड़ में अति आधुनिक मनुष्य बन चुके हैं । आज के वैज्ञानिक युग में सभ्यता तेजी से विकसित तो हुई लेकिन इस सभ्यता ने मनुष्य के दृष्टिकोण को बिल्कुल परिवर्तित कर दिया और प्रतिस्पर्धा करते–करते कैसे वह एक मशीन में तब्दील हो गया, उसे पता ही नहीं चला। आज उसका प्रधान लक्ष्य केवल धन अर्जित करना रह गया है, सारे संबंधों को खारिज करता वह निरंतर आगे बढ़ रहा है, हमारी संवेदनाएँ मृत होती जा रही हैं, ऐसी विकट परिस्थितियों में विश्व गुरु और विकसित भारत की परिकल्पना का सपना कैसे पूरा होगा, इसी संदर्भ में प्रश्न उठता हैं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन विकट परिस्थितियों का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है, इसका एक ही उत्तर एवं समाधान नजर आता है – वह है भारतीय ज्ञान परंपरा के महती मूल्यों को पुनः स्थापित करना ।

आज मनुष्यों में मानवता के स्थान पर हिंसक एवं क्रूर प्रवृत्तियों ने स्थान ले लिया है, इस समस्या का समाधान हमें भारतीय ज्ञान परंपरा की "वसुधैव कुटुंबकम" की अवधारणा में दिखाई देता है, जहाँ समूची पृथ्वी को अपना परिवार मानते हुए विश्व बंधुत्व जैसे मूल्यों को बढ़ावा देना है, संस्कृत का यह

श्लोक इसी भावना की पुष्टि करता है –

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंम्बकम॥ [2]

मानवीय संबंधों में प्रेम और सौहार्द का उदाहरण तुलसी कृत "रामचरितमानस" में प्रतिबिंबित होता है, यह भारतीय ज्ञान परंपरा एवं भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न है इसलिए प्रत्येक भारतीय का कंठहार है । तुलसी ने 'मानस' में राम परिवार के रूप में एक आदर्श परिवार की झांकी प्रस्तुत कर उसे अपनाने का संदेश दिया है, मानस में जिन चरित्रों की प्रतिष्ठा की गयी है, वे सब अनुकरणीय हैं। पिता–पुत्र, भाई–भाई, पति-पत्नी, सास-बहु एवं माता । माता सीता एवं उर्मिला के रूप में आदर्श पत्नी एवं बहु के आदर्श, राम, लक्ष्मण एवं भरत के रूप में आदर्श पुत्र एवं भाई के आदर्श वर्तमान समाज को उन्हीं के समान बनने की प्रेरणा देते हैं, अन्य पारिवारिक संबंधों में भी यही भाव प्रदर्शित होता है ।

वर्तमान में "मैं" ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है विश्व में विकसित बड़े-बड़े देश केवल अपनी तरक्की और भौतिक विकास को ही प्रमुख मानते हैं, लेकिन भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल में पूरे विश्व के मंगल और कल्याण की कामना का भाव है ---

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भाग्भवेत॥ [2]

ऐसे बहुत से उद्धरण भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित हैं, एक उद्धरण द्दष्टव्य है --- महर्षि दधीचि ने वृत्रासुर के वध के लिए स्वेच्छा से अपनी देह का त्याग कर अपनी अस्थियों का दान देवताओं को कर पूरे संसार का कल्याण किया ।

वर्तमान संदर्भों में गुरु शिष्य परंपरा उस रूप में नहीं दिखाई पड़ती, जिस प्रकार से प्राचीन काल में उन्नत थी, आज विद्यार्थियों में गुरुओं के प्रति वो आदर एवं सम्मान का भाव नहीं दिखाई पड़ता जो प्राचीन काल में होता था, उस समय समाज में गुरु को देवतुल्य माना जाता था, सभी ग्रंथों में गुरु की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है, शिष्यों का सर्वांगीण विकास गुरु के सान्निध्य में ही संभव होता था और गुरु भी अपने शिष्य के प्रति समर्पित भाव से उसके जीवन को गढ़ने के लिए पूर्णतः समर्पित रहते थे, गुरु के वचन शिष्यों के लिए अंतिम होते थे । चाणक्य और चन्द्रगुप्त का एक ऐतिहासिक उद्धरण हम सभी के समक्ष प्रत्यक्ष है। चाणक्य जैसे गुरु ने चन्द्रगुप्त के जीवन की दिशा ही बदल दी, उन्होनें चन्द्रगुप्त को रणनीति का ऐसा प्रशिक्षण दिया जिससे चन्द्रगुप्त ने अन्यायी नंदों को हराकर मौर्य साम्राज्य को खड़ा कर दिया, यह सब चाणक्य जैसे महान गुरु के माध्यम से ही संभव हो सका, गुरु से ही शिष्य का जीवन आलोकित होता था और वह राष्ट्र के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता था, भारतीय ज्ञान परंपरा में अनेकों ऐसे उद्धरण पग-पग पर देखे जा सकते हैं, इसी ने गुरुकुल शिक्षा

प्रणाली एवं गुरु शिष्य परंपरा को जन्म दिया, जहां विद्यार्थी शिक्षा के साथ-साथ सेवा, निष्ठा, त्याग, समर्पण एवं नैतिक मूल्यों के साथ साथ प्रत्येक विषय में पारंगत होकर निकलता था।

वेदों और उपनिषदों में गुरु का स्थान सर्वोपरि रहा है ---

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णुः, गुरु देवो महेश्वरः
गुरु साक्षात परब्रह्म, तस्मै श्री गुरु वे नमः।। [3]

वर्तमान युवा पीढ़ी का चारित्रिक उत्थान करने के लिए नयी शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से विद्यार्थियों को उन्हीं संस्कारों से जोड़ने का प्रयास किया गया है, इसके लिए मूल्य आधारित पाठ्यक्रम, कौशल आधारित पाठ्यक्रम और भारतीय ज्ञान परंपरा जैसे पाठ्यक्रमों के माध्यम से निश्चित रूप से उनकी आत्मिक उन्नति होगी।

वर्तमान में भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन भी महत्वपूर्ण है, उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन में कहा है कि हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसके चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। [4]

आज के संदर्भ में सैद्धांतिक शिक्षा से ज्यादा इसी चारित्रिक शिक्षा की आवश्यकता है, उनके विचार युवाओं में नई ऊर्जा एवं प्रेरणा का संचार करते हैं –
जागो, उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधों पर लो। और इसे भी मत भूलो कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं होता है। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, वो सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान है, बस उसे पहचानने भर की देर है। इसी प्रकार आज के समय में नैतिकता एवं परोपकार जैसे भावों को युवाओं में पुनःस्थापित करने के लिए महर्षि दयानंद जी के सिद्धांत अति प्रासंगिक हैं, उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों एवं पाखंडों का खंडन किया, उन्होंने अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' के द्वारा जनमानस में अध्यात्म एवं आस्तिकता का बोध कराया, यह एक अद्वितीय कृति है जो जीवन में सत्य का मार्ग प्रशस्त करती है। उन्होंने स्वधर्म, स्वराज एवं स्वदेशी वस्तुओं एवं स्वभाषा पर बल दिया, उनका प्रमुख नारा था --- "वेदों की और लौटो"। इस प्रकार उन्होनें सदैव समाज को आलोकित करने का कार्य किया।

आज सर्वत्र कर्मठता का अभाव है, हम सभी जीवन में ऐसा मार्ग अपनाना चाहते हैं, जहां बिना कर्म या कम परिश्रम के द्वारा ही सफलता प्राप्त हो जाए, और आगे बढ़ने के लिए जीवन में शॉर्ट कट रास्ता अपनाते हैं, कई बार कर्म नहीं करते और असफल होने पर भाग्य की दुहाई देने लगते हैं, लेकिन हमारी ज्ञान परंपरा में सदैव कर्म पर बल दिया गया है। श्रीमद्भागवत गीता का दर्शन कर्मयोग दर्शन है, और इसी दर्शन के माध्यम से विवेकानंद जी ने युवा पीढ़ी को कर्मठ बनाने का प्रयास किया है, युवा

पीढ़ी को जागृत करते हुए कहते हैं कि -- "हमें चाहिए कि हम काम करते रहें, जो कुछ भी हमारा कर्तव्य है, उसे करते रहें, अपना कंधा स्वयं काम से भिड़ाएं रखें और तभी हमारा पथ ज्ञान से आलोकित हो जाएगा ।[5] आज का समाज इन्हीं सिद्धांतों का अनुसरण कर अपने जीवन को एक सही दिशा दे सकता है ।

भारतीय ज्ञान परंपरा में समाज कल्याण, एवं राष्ट्रहित की भावना रही है और इसके केंद्र में मानवता का भाव रहा है, इस दृष्टि से सभी संतों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया, इनमें प्रमुख रूप से कबीर ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का खंडन किया और दया, प्रेम, सत्य, परोपकार एवं मानवतावादी सिद्धांतों का पोषण किया –सत्य की महत्ता पर विचार करते हुए कबीर ने कहा है ---

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके ह्रदय साँच है, ताके ह्रदय आप ।।

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्राचीन ग्रंथों जैसे रामचरितमानस, भगवद्गीता,वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में निहित ज्ञान हिन्दी साहित्य के माध्यम से सामान्य जन तक पहुंचता रहा है, इनमें कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, ज्ञानदेव, दादू दयाल, नामदेव, तुकाराम, चैतन्य महाप्रभु आदि की रचनाएं हर युग में प्रासंगिक रहेंगी । भारत के प्राचीन शिक्षण संस्थान समूचे विश्व में प्रसिद्ध थे, इनमें तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशीला एवं काशी आदि प्रमुख थे । मनीषियों में आर्यभट्ट, चरक, कणाद, अगस्त, भर्तृहरि, शंकराचार्य एवं विवेकानंद आदि ने सदैव भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध किया है । इस प्रकार कह सकते हैं कि भारतीय ज्ञान परंपरा का सागर अथाह है, समाज की सभी समस्याओं का समाधान इस परंपरा में निहित है, चाहे पर्यावरण का मुद्दा हो या प्रदूषण का या फिर वन्य जीवों की सुरक्षा का प्रश्न हो, नारी उत्थान या सशक्तिकरण या सामाजिक विकास से जुड़ा कोई भी मुद्दा । वर्तमान में लिव-इन-रिलेशनशिप जैसे मुद्दों का हल भी भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित है ।

वर्तमान में भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ की बात की जाए तो हम पाते हैं कि इसके स्वरूप मे परिवर्तन आया है । उद्धारण के लिए आज हम जिस उपभोक्तावादी संस्कृति में जी रहे है उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आज का युवा या विद्यार्थी ज्ञान अर्जित तो कर रहा है लेकिन उसका उद्येश्य मानों केवल आर्थिक एवं भौतिक उन्नति तक सीमित होकर रह गया है वह केवल बड़े बड़े पैकेज चाहता है और इसके लिए चाहे उसे माता -पिता या अन्य परिवार जनों से विलग ही क्यों न होना पड़े । इस प्रकार आध्यात्मिक या आत्मिक उन्नति से उसका कोई सरोकार नहीं है । इसके अतिरिक्त जहां श्रवण कुमार जैसा पुत्र था जो नेत्रहीन माता पिता को कंधों पर लेकर उनकी इच्छा पूर्ति के लिए तीर्थ यात्रा पर निकला था, लेकिन वर्तमान समय में वृद्ध माता- पिता संतान को बोझ नजर आते है और दिन प्रतिदिन वृद्धाश्रमों की संख्या बढ़ती जा रही है । गुरु शिष्य परंपरा में भी वो

समर्पण नहीं नजर आता जहाँ शिष्य गुरु दक्षिणा दिए बिना शिक्षा को सम्पूर्ण नहीं मानते थे, इसी प्रकार गुरु भी अपने शिष्यों को गढ़नें के लिए सदैव समर्पित रहते थे, इसी प्रकार आज स्वाध्याय, चिंतन एवं मनन की प्रवति भी समाप्त होती जा रही है क्योंकि इनका स्थान गूगल बाबा और चैट जी पी टी आदि ने ले लिया है, इसलिए आधुनिक युग में दयानंद एवं विवेकानंद जैसे महापुरुष का जन्म भी दुर्लभ हो गया है । इसी प्रकार आज “अतिथि देवोभव” और “वसुधैव कुटुंबकम” जैसे भाव सैद्धांतिक रूप से तो सुनने में बड़े अच्छे लगते हैं, लेकिन इनकी कटु सच्चाई से हम सभी भली भांति अवगत हैं। लेकिन योग, वास्तुशास्त्र एवं आयुर्वेद जैसी चिकित्सा पद्धति आज वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना रही है । कोरोना काल में वैश्विक स्तर पर सभी ने इसके महत्व को स्वीकार किया । 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का मनाया जाना इसका सशक्त प्रमाण है । इसी संदर्भ में एक सबसे बड़ा प्रश्न उठता है कि समाज को इस परंपरा से कैसे जोड़ा जाए । इस विषय में कहा जा सकता है कि इसकी शुरुआत परिवारों से ही करनी होगी, परिवारों में सर्वप्रथम माता-पिता का दायित्व है कि वे आज के इस अति आधुनिक युग में अपनी संतानों के लिए समय निकालें, आत्मीयता के साथ उनसे संवाद करें एवं उनके साथ समय बिताएं, बचपन से ही उनको संस्कार प्रदान करें इसके लिए परिवार में नैतिक एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण निर्मित करें एवं बालपन से ही उन्हें महापुरुषों के जीवन एवं महान ग्रंथों से परिचित कराते हुए उन्हें उन्हीं आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरित करें ।

दूसरा इसके लिए शिक्षण संस्थान भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण हैं । नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से विद्यार्थियों को इस ज्ञान परंपरा से जोड़ने का सफल प्रयास सरकार द्वारा किया गया है और इसके लिए मूल्य परक शिक्षा एवं भारतीय ज्ञान परंपरा जैसे पाठ्यक्रमों को लगाया गया है जिससे विद्यार्थी उस सांस्कृतिक विरासत से परिचित हो सकें, उन मूल्यों को अपने जीवन में ढाल सकें,उनसे प्रेरणा ले सकें लेकिन इतना ही काफी नहीं है, विद्यार्थियों को जमीनी स्तर पर भी इस परंपरा से जोड़ने के लिए उनको सामाजिक बनाना होगा, उन्हें ऐसी बस्तियों एवं वृद्धाश्रमों में भेजा जाए जहाँ उनमें स्वयं सेवा एवं समर्पण का भाव आंतरिक रूप से पनपे और वे यही संस्कार आने वाली पीढ़ी को दे सकें, इसी प्रकार कोई भी पर्व एवं उत्सव को केवल धर्म एवं जाति विशेष तक सीमित न रखा जाए अपितु उसे सामूहिक रूप से मनाया जाए जिससे जनसमुदायों को सभी पर्वों एवं संस्कृतियों को जानने का अवसर मिले और वे एक दूसरे के निकट आ सकें । इस संदर्भ में ब्रज की सामूहिक होली के पर्व का उद्धारण द्दष्टव्य है । इसके साथ साथ अपनी स्थानीय परंपराओं, संगीत, नृत्य एवं लोकगीतों की परंपराओं को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता भी है ।

यह सत्य है कि वर्तमान युग संस्कृतियों के संक्रमण का युग है इसलिए अनेक चुनौतियाँ भी हैं क्योंकि आज की युवा पीढ़ी में इन परंपराओं के प्रति न तो लगाव है और न ही आस्था एवं विश्वास । इसलिए आज एक सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है, आज के समय में इनको वैज्ञानिक द्दष्टिकोण से समाज के समक्ष रखना होगा । युवा पाश्चात्य शैली से प्रभावित हैं, आज हमें उनको इस

विदेशी जीवन पद्धति की खामियों को न बताकर भारतीय जीवन शैली एवं इसमें निहित ज्ञान परंपरा की महत्ता से परिचित कराना होगा और दोनों पद्धतियों में सामंजस्य बिठाकर चलना होगा। आज परंपरागत पद्धतियों एवं आधुनिक पद्धतियों को साथ साथ लेकर चलना होगा। अंग्रेजी भाषा से कोई परहेज नहीं होना चाहिए लेकिन अपनी मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति कभी हीन भावना न आने पाए, विदेश में रहने पर भी अपनी मिट्टी से जुड़ें रहने का भाव सदैव रहे।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्पराएं लगातार भारत को समृद्ध करती रही हैं, हमें अपनी इस विरासत पर गर्व है।

संदर्भ ग्रंथ

1. मैथिलीशरण गुप्त (1984), भारत भारती, चिरगांव (झांसी), पृष्ठ संख्या –16, साहित्य सदन प्रकाशन.
2. डॉ. रवींद्र नागर, भारतीय संस्कृति, पृष्ठ संख्या –22, नीता प्रकाशन, दिल्ली.
3. पी. सिंह (2015), भारतीय कला एवं संस्कृति की विकास यात्रा, पृष्ठ संख्या –49, ज्योत्सना प्रकाशन, दिल्ली.
4. w.w.w.hindkeguru.com
5. स्वामी विवेकानंद (2022), कर्मयोग, पृष्ठ संख्या –58, मेपल प्रेस, नोएडा, भारत.